"सांगीतिक घरानों के विकास में संस्थागत शिक्षण की भूमिका"

संगीत कला का इतिहास व परम्परा मनुष्य की उत्पत्ति जितनी ही प्राचीन कही जाती है। कला कोई भी हो उसकी पहचान उसकी परम्परा और परिपक्वता से ही की जाती है। अगर किसी भी कला को उसकी परम्परा से पृथक कर दिया जाए तो वह खोखली और अविश्वसनीय होकर रह जाती है।

जब भी कोई कला विकसित एवं परिष्कृत होते हुए इतनी सुसंस्कृत और समृद्ध हो जाती है कि कला मर्मज्ञ व जनमानस के सम्मुख उस कला की विशेष मान्यता व प्रतिष्ठा बन जाती है। "तब उस कला की एक विशेष एवं विशिष्ट परम्परा का अध्याय शुरू होता है।"1 कला की इन्हीं विधाओं की इस परम्परा में उनकी कलात्मक उपलब्धियों का समावेश रहता है। वहीं पीढ़ी दर पीढ़ी कला की समयानुकूल उन्नति के आधार पर भिन्न–भिन्न शैलियों की सृष्टि और उनकी प्रगति भी समाविष्ट रहती है। अतः इसी दृष्टि से भारतीय संगीत में गायन, वादन एवं नृत्य की परम्पराएं विविध रूपों में प्रस्फुटित होती रही है और कालान्तर में यही परम्पराएं संगीत के विभिन्न घरानों के रूप में जानी जाती है।

"प्रायः संगीत में घराना किसी रीति या शैली का ही दूसरा नाम है। दक्षिण में इसे 'सम्प्रदाय' तथा पाश्चात्य में इसे स्कूल्स कहा जाता है।"2 संगीत शिक्षण की गुरु–शिष्य परम्परा हमारे देश में प्राचीन समय से ही चली आ रही है। जिस प्रकार साहित्य, दर्शन, वेद आदि को श्लोक के रूप में कण्ठस्थ याद किया जाता था, उसी प्रकार संगीत जो प्रदर्शनात्मक कला है, गुरुमुख द्वारा ही आत्मसात् कर ली जाती है।

संगीत के घरानों के ही संदर्भ में हम बात करते हैं तो यह ज्ञात होता है कि घरानों के विकास की परम्परा तो राजपूत–काल में ही शुरू हो गई थी। राज्याश्रयी राजाओं के द्वारा घरानों को सुरक्षित एवं संरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका दर्शायी गयी। 'राजाओं द्वारा संगीतज्ञों को संरक्षण मिला और इसलिए कलाकार अपनी कलाओं के प्रदर्शन एवं सेवाएं देने में समर्थ रहे तथा उन्हें जीविका–निर्वाह के आर्थिक संकटों से मुक्त रखा गया। परन्तु धीरे–धीरे ऐसा समय भी आया कि गिनी–चुनी रियासतों के अतिरिक्त सभी कलाकारों के लिए अन्य सभी द्वार बंद हो गये।"3 फलस्वरूप घरानेदार गायकों को आर्थिक आश्रय के लिए अन्य स्थानों पर भटकना पड़ा। समाज में गिने–चुने अमीर वर्ग के लोगों ने संगीतकारों को आर्थिक आश्रय दिया परन्तु यह भी बहुत नियमित रूप से नहीं हो सका। अतः आर्थिक सुरक्षा के अभाव में घरानों के विकासक्रम में अवरोध बढ़ते चले गये। अतः ब्रिटिश शासन काल में आने से घरानों का विकास हो पाना असम्भव सा ही प्रतीत होने लगा।

"परन्तु संयोगवश ऐसे समय में संगीतोद्धारक और युग प्रवर्तक के रूप में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे और पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने इन कठिन चुनौती का सामना करते हुए दृढ़ निश्चय किया कि वे संगीत शिक्षा के परिवर्तित रूप द्वारा समाज में संगीत की प्रतिष्ठा और सम्मान को पुनः स्थापित करेंगे और संगीत की इस परम्परा को सुरक्षित रख आगे बढ़ाने का प्रयास करेंगे।"4

अतः लम्बे समय तक दोनों ही शिक्षण पद्धतियों का घराना परम्परा तथा संस्थागत शिक्षण प्रणाली का अस्तित्व मुगलकाल के अन्तिम समय तक व ब्रिटिश शासनकाल के आरम्भ में रहा। उस समय में संगीत ही नहीं अपितु प्रत्येक विषय के अध्ययन व अध्यापन में नया परिवर्तन आया। "आज संगीत में सामूहिक व बड़े पैमाने पर जो शिक्षण प्रदान किया जा रहा है वह 19वीं शताब्दी की ही देन है।"5 स्वतंत्रता के पश्चात् तो घराने के गुरु समय के परिवर्तन को समझते हुए घरानों की तालीम को अपने वंश तथा शिष्यों से पृथक भी देने को तैयार हो गए। पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा पं. विष्णु नारायण भातखण्डे आदि विद्वत संगीतज्ञों द्वारा घराने की परम्परा का संस्थागत शिक्षण के रूप में प्रचलन हुआ। "अतः घरानों के द्वारा संगीत की संवृद्धि तो हुई परन्तु उसे थोड़े ही व्यक्तियों में सीमित कर उसकी प्रगति को अवरूद्ध कर दिया।"6

अतः विदेशी शासकों की शिक्षा के कारण शिक्षा के सारे ढ़ांचे का पाश्चात्यीकरण हुआ। पं. भातखण्डे एव पलुस्कर जी का उद्देश्य यही था कि भारतीय संगीत के घरानों के लुप्त होते हुए स्वरूप को तथा संगीत को पुनः जीवित कर समाज में उन्हें सम्मान मिले और संगीत कला को खोयी हुई प्रतिष्ठा और गरिमा पुनः प्राप्त हो सके। संगीत के प्रचार–प्रसार हेतु संगीत के एक पक्ष को सरल बनाना भी जरूरी रहा और इसीलिए दोनों ही विद्वानों द्वारा अपने–अपने तरीके से स्वरलिपि का निर्माण किया गया, जिसके द्वारा सांगीतिक बंदिशों को सुरक्षित भी रखा जा सके और शिक्षण में स्वरलिपि एक सरल साधन के रूप में प्रयोग की जा सके।

"दोनों ही विषयों द्वारा संगीत की गुरु शिष्य परम्परा को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी ने 5 मई, 1908 को लाहौर में गान्धर्व महाविद्यालय (संगीत) की नींव रखी तथा सन् 1911 में पूना में भारत गायन समाज नामक स्कूल की स्थापना

पंडित भास्कर राव बरवले द्वारा की गई। इसी क्रम में 1918 में माधव संगीत विद्यालय तथा 1920 में बड़ौदा में संगीत विद्यालय की स्थापना संगीत मनीषियों के प्रयास द्वारा की गई।"7 प्राचीन समय में संगीत शिक्षा के लिए जहां स्त्रियों को कोई प्रोत्साहन व मार्गदर्शन नहीं मिलता था वहीं अब बिना किसी भेदभाव के स्त्रियों के लिए भी संगीत शिक्षण आरम्भ हुआ। फलस्वरूप अनेक विलक्षण सांगीतिक प्रतिभाएं संगीत के क्षेत्र में उभर कर सामने आई जिससे संगीत की इस घराना परम्परा को एक नई दिशा के साथ ही गरिमामय स्थान भी प्राप्त हुआ।

"पं. भातखण्डे जी ने सर्वप्रथम मुम्बई में "गायक उत्तेजक मंडली" के अन्तर्गत संगीत के शास्त्र व क्रियात्मक पक्षों का अध्ययन व अध्यापन प्रारम्भ किया। आव यकता आविष्कार की जननी है।"8 अतः संस्थागत शिक्षण प्रणाली के लिए नियमों का निर्धारण हुआ। संगीत में स्वरलिपि के निर्माण से संगीत के चिरस्थायी आजीवन संरक्षण के नए आयाम स्थापित हुए। "जिसका श्रेय केवल पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी को जाता है।"9 अतः घरानेदार संगीत शिक्षकों का सांगीतिक शिक्षण के क्षेत्र में आगमन हुआ। जिससे घराना परम्परा को नई दिशा प्रदान हुई। घराने और अधिक प्रचार में आए। अतः घरानों का विकास एवं महत्व और अधिक बढ़ता गया।

"सन् 1926 से पहले शिक्षण संस्थाओं में संगीत को विषय के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं थी लेकिन इसी वर्ष में प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा समिति के सुझाव पर प्रशासन की ओर से प्राइमरी विद्यालय के प्रथम तीन वर्षों में संगीत शिक्षा को सम्मिलित किया गया।"9

"सन् 1950 में सर्वप्रथम काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संगीत विभाग की स्थापना की गई।"10 क्योंकि शिक्षा राज्य सरकार के अधीन रहती थी, धीरे–धीरे सम्पूर्ण भारत में राज्य सरकारों द्वारा शिक्षा नीति अनुसार शैक्षणिक संस्थानों में संगीत को पाठ्य विषय के रूप में सम्मिलित कर लिया गया।

"वर्तमान समय में संगीत का शिक्षण दो माध्यमों द्वारा प्रदान किया जाता है। एक सरकारी संस्थागत शिक्षण प्रणाली, दूसरा गैर–सरकारी संस्थागत शिक्षण प्रणाली। सरकारी संस्थाओं के अन्तर्गत तो विद्यालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय आते हैं। जिनमें संगीत का शिक्षण एक ऐच्छिक विषय के रूप में करवाया जाता है तथा गैर–सरकारी संस्थाओं के अन्तर्गत प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद (उ.प्र) भातखण्डे संगीत विद्यालय, लखनऊ (उ. प्र.) तथा प्राचीन कला केन्द्र, चण्डीगढ आते हैं। दोनों ही शिक्षण संस्थाओं के प्रवेश, प्रशिक्षण व उपाधियाँ आवंटन के नियम, उपनियम सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। अतः इसके अतिरिक्त अनेक घरानेदार गुरुजन अपने घरों में भी योग्य व जिज्ञासुजनों को संगीत का प्रशिक्षण देते हैं परन्तु उनकी उपाधि प्राप्त करने हेतु परीक्षा का संचालन मान्यता प्राप्त संस्थानों द्वारा ही किया जाता है।"11

अतः संगीत का जो ज्ञान पहले आठ–दस वर्षों में बड़ी मुश्किल व खुशामद करने के पश्चात् मिलता था आज वही ज्ञान संस्थागत शिक्षण प्रणाली द्वारा सभी लोगों को आसानी से उपलब्ध होना संस्थागत शिक्षण प्रणाली की महत्वपूर्ण देन ही संगीत जगत के घरानों को प्राप्त हुई।

अतः इस प्रकार व्यापक और विशिष्ट दोनों ही पहलुओं में संस्थागत शिक्षा का स्वरूप बन सका और यह अपेक्षित था कि ऐसी शिक्षा द्वारा ज्ञानार्जन, कलात्मक अभिव्यक्ति, क्षमता, सृजनात्मकता और रूचि और अधिक बढ़ेगी और घराना परम्परा से जो भी संगीत कला का रूप सुरक्षित रहा उसका उपयोग कैसे हो, किस तरह से रागों के स्वरूप को तटस्थता और प्रमाणिकता से सर्वमान्यता दी जाए और बंदिशों को किस प्रकार सुरक्षित रखा जाए इन सभी उद्दे यों से संस्थागत शिक्षण प्रणाली शुरू की गई।

अतः इन सभी तथ्यों को जानने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि सांगीतिक घरानों के विकास में संस्थागत शिक्षण की अहम भूमिका रही है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. बंसल, डॉ. परमानन्द एवं डॉ. ज्ञानचन्द (2010), 'नाद–कंचन', प्रासंगिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ. सं. 48
2. शर्मा, डॉ. मनोरमा, (2010), शास्त्रीय संगीत की परम्परा, पटियाला घराना, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, (म.प्र.), पृ. सं. 9
3. श्रीवास्तव, सुधा (2002), भारतीय संगीत के मूलाधार, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर (राज0), पृ. सं. 170
4. वही पृ. सं. 171
5. बंसल, डॉ. परमानन्द एवं डॉ. ज्ञानचन्द (2010), 'नाद–कंचन', प्रासंगिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ. सं. 73
6. शर्मा, डॉ. अमिता (2000), शास्त्रीय संगीत का विकास, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, पृ सं. 190
7. बंसल, डॉ. परमानन्द एवं डॉ. ज्ञानचन्द (2010), 'नाद–कंचन', प्रासंगिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ. सं. 74
8. वही पृ. सं. 74
9. वही पृ. सं. 74
10. वही पृ. सं. 74
11. वही पृ. सं. 75

गरिमा पंचोली
शोधार्थी, संगीत
वनस्थली विद्यापीठ
राजस्थान।

डॉ. संतोष पाठक
एसोसिएट प्रोफेसर
संगीत विभाग।